# गणपति पाटिल: एक खुद्दार स्वतंत्रता सेनानी जिन्होंने न पेशंन ली न सरकारी सुविधाएँ

101 वर्ष के हो चुके गणपति पाटिल, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अपने योगदान और 1947 के बाद महाराष्ट्र के कोल्हापुर ज़िले के विकास में निभाई भूमिका को याद कर रहे हैं

वह लगभग 50 वर्ष पहले अपने द्वारा बनवाए गए कोल्हापुर के इस मज़बूत बांध पर बने छोटे से पुल के ऊपर बैठे हुए हैं; पूरी तरह शांत और तपती गर्मी से बेफ़िक्र. वह धैर्य से उन सवालों के जवाब दे रहे हैं जो हमने दोपहर के खाने के समय उनसे पूछे थे. वह हमारे साथ पुल के ऊपर पूरे उत्साह और ऊर्जा के साथ चलते हैं और बताते हैं कि 1959 में यह बांध कैसे बना था.

छह दशक बाद, गणपति ईश्वर पाटिल को अब भी सिंचाई का ज्ञान है और वह किसानों तथा खेती की पूरी समझ रखते हैं. उन्हें भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का ज्ञान है, जिसका वह एक हिस्सा थे. वह 101 वर्ष के हो चुके हैं और भारत के आख़िरी जीवित स्वतंत्रता सेनानियों में से एक हैं.

वह 1930 के दशक के बाद के अपने जीवन के बारे में काफ़ी संकोच और विनम्रता के साथ बताते हैं, “मैं सिर्फ़ एक संदेशवाहक था. अंग्रेज़-विरोधी भूमिगत आंदोलनों का एक संदेशवाहक.” उसमें प्रतिबंधित कम्युनिस्टों, समाजवादियों और कांग्रेस पार्टी (1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के आसपास) के आंदोलनकारी ग्रुप के नेटवर्क शामिल थे. वह काम में बहुत तेज़ रहे होंगे, क्योंकि वह कभी पकड़े नहीं गए. वह लगभग खेद के स्वर में कहते हैं, “मैं जेल नहीं गया.” यह बात हमें दूसरे लोग बताते हैं कि उन्होंने ताम्र-पत्र भी स्वीकार नहीं किया और 1972 से स्वतंत्रता सेनानियों को दी जाने वाली पेंशन भी नहीं ली.

वह लगभग खेद के स्वर में कहते हैं, “मैं जेल नहीं गया.” यह बात हमें दूसरे लोग बताते हैं कि उन्होंने ताम्र-पत्र भी स्वीकार नहीं किया और 1972 से स्वतंत्रता सेनानियों को दी जाने वाली पेंशन भी नहीं ली

जब हमने उनसे कोल्हापुर ज़िले के कागल तालुका के सिद्धनेर्ली गांव में, उनके बेटे के घर पर इस बारे में पूछा, तो वह जवाब देते हैं, “मैं ऐसा कैसे कर सकता था ? जब पेट भरने के लिए हमारे पास ज़मीन थी, तो कुछ मांगने की क्या ज़रूरत ?” तब उनके पास 18 एकड़ (ज़मीन) थी. “इसलिए मैंने मांगा नहीं, ना ही आवेदन किया.” वह कई वामपंथी स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा कही गई बात को दोहराते हैं: “हम इस देश की आज़ादी के लिए लड़े थे, पेंशन पाने के लिए नहीं.” और वह इस बात पर बार-बार ज़ोर देते हैं कि

उनका रोल बहुत छोटा सा था – हालांकि उग्र भूमिगत आंदोलन में संदेशवाहक का काम जोखिम भरा होता था, ख़ासकर जब युद्ध के समय उपनिवेशी सरकार ने कार्यकर्ताओं को आम दिनों की तुलना में और भी तेज़ी से फांसी देना शुरू कर दिया था.

शायद उनकी मां को इन जोखिमों की जानकारी नहीं थी, इसलिए उन्होंने संदेशवाहक के रूप में अपने बेटे का काम स्वीकार कर लिया – जब तक कि वह जनता के बीच स्पष्ट रूप से यह काम करते हुए ना दिखें. कागल के सिद्धनेर्ली गांव स्थित अपने पैतृक घर में आने के कुछ समय बाद ही उनकी मां को छोड़कर पूरा परिवार, प्लेग की वजह से ख़त्म हो गया था. 27 मई, 1918 के दिन उसी तालुका के कर्नूर गांव में स्थित अपने ननिहाल में जन्मे गणपति बताते हैं कि उस वक़्त वह सिर्फ़ "साढ़े चार महीने" के थे.

वह परिवार की ज़मीन के इकलौते वारिस बन गए और उनकी मां ने सोचा कि उन्हें किसी भी उद्देश्य के लिए अपनी जान जोख़िम में डालने की अनुमति नहीं देंगी. "वह तो जब [1945 के दौरान] मैंने खुलकर जुलूस में भाग लिया या आयोजित करवाया, तब जाकर लोगों को मेरे राजनैतिक जुड़ाव के बारे में पता चला." वह 1930 के दशक के अंत और 1940 के दशक के आरंभ में सिद्धनेर्ली के खेत में आंदोलनकारियों के साथ चुपचाप बैठकें किया करते थे. "घर में सिर्फ़ मेरी मां और मैं ही था – बाकी सभी की मृत्यु हो चुकी थी – लोगों को हमसे सहानुभूति थी और वे मेरा ध्यान रखते थे."

गणपति पाटिल की गाड़ी, उनके या उनके भाई के पोते द्वारा भेंट की गई सेना की एक जीप है. विडंबना यह है कि इसके आगे वाले बंपर पर अंग्रेज़ों का झंडा पेंट किया हुआ है

यह सब तब शुरू हुआ, जब गणपति पाटिल 12 वर्ष की उम्र में मोहनदास करमचंद गांधी का भाषण सुनने के लिए, सिद्धनेर्ली से 28 किमी पैदल चलकर निपाणी गए थे

उनके वक़्त के लाखों अन्य व्यक्तियों की तरह, यह सब तब शुरू हुआ, जब गणपति पाटिल 12 वर्ष की उम्र में ख़ुद से पांच गुना ज़्यादा उम्र के इस व्यक्ति से मिले. पाटिल, सिद्धनेर्ली से [आज कर्नाटक में स्थित] निपाणी तक 28 किमी पैदल चलकर, मोहनदास करमचंद गांधी का भाषण सुनने गए थे. इस भाषण ने उनकी ज़िंदगी बदल दी. गणपति समारोह के अंत में मंच तक भी पहुंच गए और "सिर्फ़ महात्मा के शरीर को स्पर्श करके ही आनंदित हो गए."

हालांकि, वह साल 1941 में जाकर भारत छोड़ो आंदोलन की पूर्वसंध्या पर, कांग्रेस पार्टी के सदस्य बने. साथ ही साथ, उनका अन्य राजनीतिक शक्तियों के साथ जुड़ाव भी बना रहा. साल 1930 में जब वह निपाणी गए थे, तबसे लेकर उनके कांग्रेस में शामिल होने तक, उनके तार मुख्य तौर पर पार्टी के समाजवादी गुट के साथ जुड़े हुए थे. 1937 में उन्होंने बेलगाम के अप्पाचीवाड़ी के प्रशिक्षण शिविर में भाग लिया था, जिसका आयोजन समाजवादी नेता एसएम जोशी व एनजी गोरे ने किया था. वहां सतारा की भावी प्रति सरकार के नागनाथ नायकवाड़ी ने भी प्रतिभागियों को संबोधित किया था. साथ ही, गणपति समेत सभी प्रतिभागियों ने हथियारों की ट्रेनिंग भी ली थी. ( पढ़ें: कैप्टन भाऊ : तूफ़ान सेना के तूफ़ानी क्रांतिकारी एवं प्रति सरकार की आख़िरी जय-जयकार )

वह बताते हैं कि 1942 में "भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से निष्कासित संतराम पाटिल, यशवंत चव्हाण [कांग्रेस नेता याईबी चव्हाण न समझें], एसके लिमए, डीएस कुलकर्णी जैसे नेताओं और कार्यकर्ताओं ने नवजीवन संगठन की स्थापना की." गणपति पाटिल भी उनके साथ जुड़ गए.

उस वक़्त, इन नेताओं ने कोई अलग पार्टी नहीं बनाई थी, हालांकि इन्होंने जो समूह बनाया था वह लाल निशान के नाम से जाना जाने लगा. (यह 1965 में एक राजनैतिक दल के तौर पर उभरा, लेकिन 1990 के दशक में फिर से बिखर गया).

गणपति पाटिल बताते हैं कि आज़ादी के पहले की सारी उथल-पुथल के दौरान, वह "अपने विभिन्न समूहों और कॉमरेडों तक संदेश, दस्तावेज़ व सूचना पहुंचाते थे." वह अपने कामों के ब्योरे बताने की बात विनम्रतापूर्वक यह कहते हुए टाल जाते हैं कि इसमें उनकी केंद्रीय भूमिका नहीं थी. फिर भी, वह हंस (ख़ुश होकर) पड़ते हैं जब उनके बेटे के घर पर दोपहर के भोजन के समय कोई कहता है कि डाकिए और संदेशवाहक के रूप में इनकी क्षमता का पता 12 वर्ष की उम्र में ही लग गया था, जब वह ख़ामोशी से 56 किमी पैदल चलते हुए निपाणी गए और फिर वहां से वापस आ गए थे.

गणपति बताते हैं, "आज़ादी के बाद लाल निशान ने किसान मज़दूर पार्टी (पीडब्लूपी) के साथ मिलकर कामगार किसान पार्टी बनाई." यह दल, मशहूर क्रांतिकारी नाना पाटिल और उनके साथियों के भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (सीपीआई) में शामिल होने के साथ ही बिखर गया. पीडब्लूपी का पुनर्गठन हुआ और लाल निशान संगठन के लोग फिर से इकट्ठा हुए. 2018 में, एलएनपी का वह गुट जिससे गणपति की पहचान जुड़ी थी, सीपीआई में शामिल हो गया.

साल 1947 में आज़ादी मिलने के बाद, कोल्हापुर में भूमि सुधार जैसे अनेक आंदोलनों में पाटिल की भूमिका अधिक केंद्रीय रही. खुद ज़मींदार होने के बावजूद, उन्होंने खेतिहर मज़दूरों को बेहतर पारिश्रमिक दिलाने की लड़ाई लड़ी और उन्हें एक अच्छी न्यूनतम मज़दूरी दिलवाने के लिए दूसरे किसानों को मनाया. उन्होंने सिंचाई के लिए 'कोल्हापुर-जैसा बांध' बनवाने पर ज़ोर दिया – ज़िले का पहला बांध (जिसके ऊपर हम बैठे हैं) अब भी क़रीब एक दर्जन गांवों के काम आ रहा है, और स्थानीय किसानों के नियंत्रण में है.

गणपति कहते हैं, "हमने लगभग 20 गांवों के किसानों से पैसा इकट्ठा करके, इसका निर्माण सहकारी ढंग से करवाया." दूधगंगा नदी पर स्थित पत्थर चिनाई बांध 4,000 एकड़ से अधिक भूमि को सींचता है. वह गर्व से कहते हैं कि यह काम बिना किसी विस्थापन के पूरा हुआ था. आज इसे एक राज्य-स्तरीय मध्यम-सिंचाई स्कीम के तौर पर वर्गीकृत किया जाएगा.

कोल्हापुर में स्थित इंजीनियर और गणपति के पुराने साथी, स्वर्गीय संतराम पाटिल ( लाल निशान पार्टी के सह-संस्थापक) के बेटे अजीत पाटिल कहते हैं, "इस क़िस्म का बांध नदी के बहाव की दिशा में बनाया जाता है." "ज़मीन न तो उस वक़्त डूबी थी न आज डूबी है, और नदी का बहाव अनुचित ढंग से नहीं रोका गया है. साल भर रहने वाला जल का भंडार भू-जल को दोनों तरफ़ से भरा रखने में मदद करता है और सीधी सिंचाई के इलाक़ों के बाहर पड़ने वाले कुओं की सिंचाई क्षमता भी बढ़ाता है. यह बांध कम लागत का है, जिसका रख-रखाव स्थानीय लोगों द्वारा किया जाता है, और यह पर्यावरण व पारिस्थितिकी को न के बराबर नुक़्सान पहुंचाता है."

हम मई की भयंकर गर्मी में भी, पानी से पूरी तरह भरा यह बांध देख रहे हैं, और बांध के 'द्वार' बहाव को नियंत्रित करने के लिए खुले हैं. बांध के रुके हुए पानी में काफ़ी मत्स्य-पालन भी होता है.

गणपति पाटिल पूरे गर्व से कहते हैं, "हमने इसे 1959 में बनवाया था. वह हमारे पूछे बिना यह नहीं बताते हैं कि वह पट्टे पर ली गई कई एकड़ ज़मीन पर खेती कर रहे थे, जिसे बांध से सीधे तौर पर लाभ पहुंच रहा था. उन्होंने वह पट्टा निरस्त कर दिया और ज़मीन मालिक को वापस कर दी. उनके लिए यह ज़रूरी था कि "मैं यह काम अपने निजी फ़ायदे के लिए करता हुआ न दिखूं." इस पारदर्शिता और हित का कोई टकराव न रहने के कारण, वह ज़्यादा किसानों को इस सहकारी काम से जोड़ सके. उन्होंने बांध बनाने के लिए 1 लाख रुपए का बैंक लोन लिया, 75,000 रुपए में इसे पूरा करवाया – और बचे हुए 25,000 रुपए तुरंत वापस कर दिए. उन्होंने बैंक लोन को निर्धारित तीन वर्षों के भीतर चुका दिया. (आज, इस स्तर की परियोजना के लिए 3-4 करोड़ रुपए लगेंगे, आगे चलकर उसमें महंगाई की दर से लागत बढ़ती जाएगी, और अंततः लोन नहीं चुकाया जा सकेगा).

हमने इस बूढ़े स्वतंत्रता सेनानी को पूरे दिन व्यस्त रखा, वह भी मई महीने की दोपहर की गर्मी में, लेकिन वह थके हुए नहीं लगते. वह हमें आस-पास घुमाकर और हमारी जिज्ञासा शांत करके खुश हैं. अंत में, हम पुल से उतरकर अपनी गाड़ियों की ओर जाते हैं. उनके पास सेना की एक जीप है, उनके या उनके भाई के पोते द्वारा भेंट की हुई. विडंबना यह है कि इसके आगे वाले बंपर पर अंग्रेज़ों का एक झंडा पेंट किया हुआ है और बोनट के दोनों किनारों पर 'यूएसए सी 928635' छपा है. अलग-अलग पीढ़ियों का फ़र्क़

देखने लायक है.

हालांकि, इस जीप के प्रमुख मालिक जीवन भर एक दूसरे झंडे के पीछे चलते रहे ; और आज भी चलते हैं.

अनुवाद : आनंद सिन्हा

साभार https://ruralindiaonline.org/ से